अंक : 4, दिसम्बर 2017

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
दिसम्बर 2017, अंक 4

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004,
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512,
+91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
पूर्णिमा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राज़ीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–(www.amefound.org)

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 40 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाईट देखें–(www.geagindia.org)

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए संगठनों का एक साथ आना

एस. वल्लाल कन्नम्, पी. आनन्दा प्रिया एवं पी. तमिलसेल्वी

कृषि पर काम करने वाली संस्थाएं सहयोगी पहल के माध्यम से जैविक कृषि को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। करूर में कृषि विज्ञान केन्द्र अपने बहुसंस्थागत दृष्टिकोण को अपनाकर करूर जिले के किसानों को जैविक विधि से खेती करने में सहयोग प्रदान कर रही है। इसके साथ ही वह किसानों को अपनी शुद्ध आमदनी बढ़ाने तथा खेत पर आजीविका उपलब्ध कराने के अतिरिक्त उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में भी मदद कर रही है।

जैव विविधता संरक्षण व पारिस्थितिकी पोषण

कुलस्वामी जगन्नाथ जेना

कृषि पारिस्थितिकी खेती को स्थाई बनाने का एक माध्यम है। यह हरित क्रान्ति तथा जीन क्रान्ति द्वारा व्यवसायिक कृषि माडल को बढ़ावा देने का भी एक माध्यम है। तकनीकों के अतिरिक्त, विश्व के खाद्य उत्पादित करने वाले लोगों के लिए एक न्यायोचित खाद्य प्रणाली तैयार करने की दृष्टि से भी कृषि पारिस्थितिकी महत्वपूर्ण है।

छोटे किसानों की बहु आवश्यकताओं को पूरा करना

एम.एन कुलकर्णी एवं एस.एम. हीरेमथ

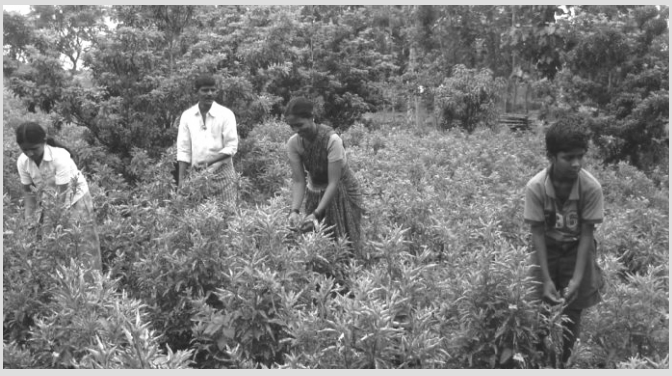

कृषि पारिस्थितिकी को बढ़ावा देने में स्वैच्छिक संगठनों की प्रमुख भूमिका रहती है। विकास के कार्यों में किसानों को सहभागी बनाकर, बायफ ने कर्नाटक के 505 गाँवों के 21000 किसानों की आजीविका सुरक्षा को उन्नत किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मुख्य निवेशों जैसे बीज, रोपण सामग्रियों एवं जानकारी आदि पर पहुंच बढ़ाकर अस्थाई खेती को स्थाईत्व की ओर ले जाया जा सकता है।

अकृषित खाद्य : छुपा हुआ खजाना

अंशुमान दास

बहुत से कारणों की वजह से झारखण्ड में पहाड़िया आदिवासियों के भोजन से जंगलों से मिलने वाले खाद्य पदार्थों का हिस्सा कम हो चला है, जिससे उनकी खाद्य सुरक्षा एवं पोषण पर व्यापक असर पड़ा है। अकृषित खाद्य पदार्थों की सुरक्षा, संरक्षण, प्रसंस्करण आदि विभिन्न प्रकार की पहलों के माध्यम से उन्हें पुनः मुख्य धारा में शामिल करने तथा समुदाय की खाद्य विविधता को उन्नत बनाने में मदद मिली है। साथ ही साथ भूख एवं कुपोषण की समस्या से निपटने में भी सहायता मिली है।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, दिसम्बर 2018

5 जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए संगठनों का एक साथ आना
एस. वल्लाल कन्नम्, पी. आनन्दा प्रिया एवं पी. तमिलसेल्वी

9 जैव विविधता संरक्षण व पारिस्थितिकी पोषण
कुलस्वामी जगन्नाथ जेना

13 छोटे किसानों की बहु आवश्यकताओं को पूरा करना
एम.एन. कुलकर्णी एवं एस.एस. हीरेमथ

17 अकृषित खाद्य : छुपा हुआ खज़ाना
अंशुमान दास

यह अंक...

लीज़ा इण्डिया हिन्दी, दिसम्बर, 2017 का अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। लघु एवं सीमान्त किसानों को जल–जंगल–जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों से दूर करना मतलब उन्हें उनके जीवन से दूर करना है। इसलिए यह आवश्यक है कि जल–जंगल–जमीन को संरक्षित करने के लिए इन लघु एवं सीमान्त किसानों को ही तैयार किया जाये। तैयार करने का यह जिम्मा, नागर समाज संगठनों, सरकारों एवं अन्य बुद्धिजीवी वर्ग का है।

कुछ इन्हीं विषयों पर आधारित इस अंक का पहला लेख एस. वल्लाल कन्नम, पी. आनन्दप्रिया एवं पी. तमिलसेल्वी द्वारा लिखित ''जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए संगठनों का एक साथ आना'' है। इस लेख में लेखकों ने जैविक खेती के माध्यम से लघु एवं सीमान्त किसानों की आजीविका व कृषि में स्थाईत्व सुनिश्चित करने के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों संगठनों को एक साथ आने की महत्ता बताई है। लेख में स्पष्ट रूप से यह वर्णित किया गया है कि जैविक कृषि एवं किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रक्षेत्र प्रदर्शन के साथ–साथ जागरूकता अभियान चलाना भी महत्वपूर्ण है। पत्रिका का दूसरा लेख ''कृषि पारिस्थितिकी : जैव विविधता संरक्षण व पारिस्थितिकी पोषण'' है, जिसे कुलस्वामी जगन्नाथ जेना ने लिखा है। इस लेख में यह दर्शाया गया है कि उड़ीसा की अग्रगामी नामक संस्था ने एकीकृत खेती के विभिन्न सिद्धान्तों व तकनीकों को अपनाकर पारिस्थितिकी कृषि को बढ़ावा देते हुए छोटे खेतिहर समुदायों की कृषि आधारित आजीविका को स्थाईत्व प्रदान करने का काम किया है। इसके साथ ही इस लेख में खेती में महिलाओं के योगदान को भी दर्शाया गया है।

एम.एन. कुलकर्णी एवं एस.एम. हीरेमथ द्वारा लिखित तीसरे लेख ''छोटे किसानों की बहु आवश्यकताओं को पूरा करना'' में वृक्ष आधारित खेती प्रणाली की तकनीकों एवं उससे होने वाले बहुत से फायदों के बारे में सजीव चित्रण किया गया है। लेख के माध्यम से यह बताया गया है कि कृषि के साथ–साथ सामाजिक–वानिकी को अपनाकर छोटे–मझोले किसान अपनी आजीविका में स्थाईत्व ला सकते हैं और अपने जीवन की बहु आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

पत्रिका का चौथा और अन्तिम लेख अंशुमान दास द्वारा लिखित ''अकृषित खाद्य : छुपा हुआ खजाना'' है। इस लेख में लेखक ने जंगल एवं जंगल आधारित उत्पादों की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए उनके संरक्षण पर बल दिया है। लेखक ने यह भी बताया कि पहाड़िया जनजाति की आहार व्यवस्था से विलुप्त हो चुके पोषण से भरपूर इन जंगली उत्पादों व खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने में नागर समाज संगठनों व समुदाय के नेतृत्व दोनों की सहभागी साझेदारी आवश्यक है। लेख में इस बात पर भी बल दिया गया है कि युवा पीढ़ी को इन परम्पराओं, संस्कृतियों व उत्पादों से परिचित कराने हेतु दस्तावेजीकरण प्रक्रिया अति आवश्यक गतिविधि के तौर पर शामिल की जानी चाहिए।

अन्त में, यह कहना अधिक तर्कसंगत होगा कि लीज़ा पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख किसानों के अपने स्वयं के अनुभवों एवं संस्थाओं द्वारा किये जा रहे प्रयासों के ऊपर आधारित होते हैं, जो हिन्दीभाषी बड़े पाठक वर्ग के लिए व्यवहारिक अनुभव का एक माध्यम होते हैं। इन्हीं के साथ पत्रिका के लेखों एवं उनकी उपयोगिता पर आपके सुझावों की प्रतीक्षा में ....

• **सम्पादक मण्डल**

जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए संगठनों का एक साथ आना

एस. वल्लाल कन्नम, पी. आनन्दा प्रिया एवं पी. तमिलसेल्वी

कृषि पर काम करने वाली संस्थाएं सहयोगी पहल के माध्यम से जैविक कृषि को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। करूर में कृषि विज्ञान केन्द्र अपने बहुसंस्थागत दृष्टिकोण को अपनाकर करूर जिले के किसानों को जैविक विधि से खेती करने में सहयोग प्रदान कर रही है। इसके साथ ही वह किसानों को अपनी शुद्ध आमदनी बढ़ाने तथा खेत पर आजीविका उपलब्ध कराने के अतिरिक्त उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में भी मदद कर रही है।

फोटो : लेखक

जैविक उत्पादों एवं तकनीकों की प्रदर्शनी

यद्यपि कि भारत के अन्दर जैविक उत्पादन और विपणन की असीम संभावनाएं हैं, फिर भी विभिन्न कारणों से उत्पादन प्रमाणीकरण और विशेषज्ञता पर हमारी उपलब्धि अभी भी बहुत कम है। इन कारणों को हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देख सकते हैं–

- विशिष्ट मानकों के साथ उत्पादन पर उपयुक्त शिक्षा का अभाव
- जैविक पद्धतियों, आवश्यकताओं और रूचि रखने वाले किसानों के लिए बाजार से सम्बन्धित जानकारी तक पहुँच न होना
- जैविक खेती और जैविक खाद्य पर बेहतर उपभोक्ता सूचनाओं का अभाव
- वितरण की लागत अधिक होना
- शोध से प्राप्त परिणामों के दस्तावेजीकरण तथा किसानों एवं सलाहकारों के बीच उन परिणामों के प्रसार का अभाव
- शोध के व्यवहारिक उन्मुखीकरण की अपर्याप्तता

पी0आर0ए0 और केन्द्रित समूह चर्चा के दौरान, करूर जिले में जैविक विधि से खेती करने वाले किसानों के सामने आने वाली समस्याओं जैसे– कम उत्पादकता, कृषि अपशिष्टों का अनुपयुक्त पुनर्चक्रीकरण, कम लाभकारी मूल्य, बाजारों का अभाव, जैविक कृषि पर सूचनाओं एवं जानकारी का अभाव आदि को करूर कृषि विज्ञान केन्द्र ने चिन्हित किया। जैविक खेती को प्रोत्साहित करने के लिए, उत्पादकता को बढ़ाने के लिए और समूह के तौर पर छोटे किसानों की सहायता करने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र करूर ने क्षेत्र में किसानों के साथ काम करना प्रारम्भ किया।

भौगोलिक निकटता और खेती प्रणाली में एकरूपता के आधार पर गांवों को क्लस्टर में एकत्रित किया गया। लगभग 4 क्लस्टरों में 63 समूहों को गठित किया गया। इन सभी क्लस्टरों में धान, गन्ना, केला, मूंगफली एवं मोटे अनाज और औद्यानिक फसलों जैसे सब्ज़ियां, टापिओका व केला मुख्य फसल के रूप में उगायी जाती थी।

संस्थागत दृष्टिकोण

कृषि विज्ञान केन्द्र, करूर जिले में संस्थागत दृष्टि के माध्यम से जैविक खेती को बढ़ावा दे रहा है। के0वी0के0 करूर उत्पादन के विभिन्न पहलुओं पर जानकारी के लिए राज्य कृषि विश्वविद्यालयों तथा शोध केन्द्रों के साथ, वित्तीय सहयोग के लिए नेशनल सेण्टर ऑन आर्गेनिक फार्मिंग के साथ, मानकों एवं गुणवत्ता नियंत्रण के लिए एपीइडीए के साथ तथा विपणन सम्बन्धी सूचनाओं,

खरीद–बिक्री के लिए विपणन संगठनों के साथ व तकनीकों के प्रसारण के लिए क्लस्टर स्तर पर नागरिक संगठनों के साथ काम कर रही है। प्रत्येक संगठन एक विशिष्ट भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

क्षमता अभिवर्धन

ज्ञान एवं दक्षता बढ़ाने के उद्देश्य से प्रशिक्षणों एवं प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। मृदा उर्वरता प्रबन्धन, जैविक खेती के सिद्धान्तों एवं अभ्यासों, जैविक निवेश उत्पादन तकनीकों, प्राकृतिक संसाधनों और देशज ज्ञान, जैविक खेती एवं प्रमाणीकरण में दस्तावेजीकरण, फसल कटाई के बाद की तकनीकों आदि विभिन्न विषयों पर किसानों को प्रशिक्षण दिया गया। यह प्रशिक्षण कृषि विज्ञान केन्द्र के प्रांगण में तथा प्रक्षेत्र प्रदर्शन दोनों माध्यमों से किया गया। 2006–08 के दौरान लगभग 3402 किसानों को कृषि विज्ञान केन्द्र के माध्यम से प्रशिक्षित किया गया।

जैव निवेशों और बायोगैस अवशेषों के उपयोग पर प्रदर्शनों का आयोजन किया गया। एनसीओएफ, गाज़ियाबाद के वित्तीय सहयोग से वादासेरी, अर्चमपट्टी और मुथुलाईपट्टी गाँवों में धान, भिण्डी और केला के फसलों में जैव निवेशों पर प्रदर्शन किया गया। इससे जैविक उत्पादन तकनीकों के ऊपर किसानों का विश्वास जमा और उन्होंने इसे अपनाया। साथ ही अन्य किसानों ने भी इन तकनीकों को स्वीकारते हुए थोड़े क्षेत्र पर इसकी खेती प्रारम्भ की। जैविक खादों एवं जैविक कीटनाशकों (एजोस्पीरिलुम, फास्फोबैक्टीरिया, स्यूडोमॉस एवं ट्राइकोडर्मा), जैव नियन्त्रक (ट्राइकोडर्मा जैपोनिकम, ट्राइकोडर्मा किलोनिस), हरी खाद (सनई, ढैंचा, केलोट्रापिस, अवराई, कोलिन्जी) एवं जानवर आधारित खाद एवं वृद्धिकारक (पंचगव्य, अमृतपानी, वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीवाश, मछली अमीनो एसिड, फलों के अवशेष), जाल, वनस्पतियों एवं अन्य समृद्ध खादों की आपूर्ति किसानों को की गयी।

बायोगैस स्लरी (बायोगैस से निकलने वाले पतले घोल) के पोषण महत्व को बताने के लिए पांच स्थानों पर तिल, सूरजमुखी एवं मूंगफली की फसलों में इसका उपयोग किया गया। बायोगैस स्लरी नाइट्रोजन फिक्सिंग एवं पोषक सोलुबिलाइजिंग बैक्टीरिया व फुंगी से समृद्ध था और इस तकनीक व इसके उपयोग करने के तरीके का प्रदर्शन करने के साथ ही विविध जैविक निवेशों के उपयोग को भी बताया गया। कुलीतलाई एवं कादावुर विकासखण्डों से पुलुथेरी, सीथापट्टी, वादासेरी, थरगमपट्टी एवं आर0टी0 मलाई गाँवों के किसान इन प्रदर्शनों में शामिल थे।

व्यापक पैमाने पर जागरूकता

बड़े पैमाने पर जागरूकता उत्पन्न करने के लिए प्रदर्शनों, मॉस मीडिया कार्यक्रमों तथा प्रक्षेत्र भ्रमणों का आयोजन किया गया। 2006 से 2008 के बीच कुल 14 प्रक्षेत्र भ्रमणों का आयोजन किया गया, जिसमें 760 से भी अधिक किसानों ने जैविक कृषि के विचारों को देखा व समझा। वर्ष 2006–2008 के बीच विभिन्न स्थानों पर लगभग 21 प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया, जिसमें लगभग 20000 किसान, खेतिहर महिला किसान, ग्रामीण युवा एवं प्रसार कार्यकर्त्ताओं ने अपनी सहभागिता निभाई। इन प्रदर्शनियों के जरिये करूर एवं आस–पास के जिलों में खेतिहर समुदायों के बीच जैविक खेती पर बड़े पैमाने पर जागरूकता उत्पन्न की गयी। साथ ही जैविक खेती करने वाले तथा जैविक उत्पादों के उपभोक्ताओं के बीच एक बेहतर नेटवर्क भी विकसित किया गया। ठीक इसी प्रकार, अधिकाधिक लोगों तक पहुँच बनाने के लिए मॉस मीडिया जैसे– टीवी, रेडियो एवं समाचार पत्रों का भी सहारा लिया गया और फोल्डर, बुकलेट एवं मैनुअल के रूप में बहुत से प्रकाशन भी निकाले गये। जैविक खेती से सम्बन्धित नवीन जानकारियों तथा तरीकों को साझा करने के लिए ''जैविक रिनायसेन्स'' नाम से एक त्रैमासिक समाचार पत्र का प्रकाशन किया गया। सैम्पल किसानों के साथ एक इम्पैक्ट स्टडी भी की गयी, जिससे निकली प्राप्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि लगभग 83 प्रतिशत उत्तरदाता जैविक खेती के सभी पहलुओं जैसे जैविक खेती के सिद्धान्तों, मृदा उर्वरता उन्नत करने, जैविक खेती हेतु भूमि चयन, कीट एवं व्याधि प्रबन्धन, कटाई के बाद सुरक्षित भण्डारण एवं दस्तावेजीकरण और प्रमाणीकरण प्रक्रिया आदि से सम्बन्धित उच्च जानकारी से सम्पन्न हैं। यह आंकड़ा 2005 में प्राप्त आंकड़ों की तुलना से दुगुना था। वर्ष 2005 में मात्र 42 प्रतिशत उत्तरदाताओं को ही उपरोक्त सन्दर्भ में अच्छी जानकारी थी। कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा नियमित अन्तराल पर आयोजित किये जाने वाले अधिक संख्या में प्रशिक्षणों, प्रदर्शनों एवं अन्य प्रसार कार्यक्रमों की वजह से ही लोगों की जानकारी एवं जागरूकता के स्तर में वृद्धि संभव हो सकी है।

टेक्नोक्रेट्स के रूप में किसानों ने जैविक कृषि अभ्यासों को अपनाया

अध्ययन से यह पाया गया कि लगभग 85 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्रक्षेत्र चयन से लेकर कटाई–मड़ाई व विपणन तक सभी कार्यों में वैज्ञानिक तरीके से जैविक कृषि

अभ्यासों को अपनाया। वर्ष 2006 में 27, 2007 में 47 एवं 2008 में 22 जैविक उत्पादक समूहों का गठन किया गया। लगभग 1930 किसान इन समूहों में पंजीकृत हो चुके हैं। प्रत्येक समूह में सर्वसहमति से एक समूह नेतृत्व का चयन कर उन्हें जैविक विधि से खेती करने, दस्तावेजीकरण और प्रमाणीकरण व विपणन की प्रक्रिया के ऊपर प्रशिक्षित किया गया। इस तरह से समूह के नेताओं को टेक्नोक्रेटस के तौर पर तैयार कर तकनीकों का प्रसार किया गया। ये समूह नेता दस्तावेजीकरण तथा मानकों के रख–रखाव के लिए भी उत्तरदायी थे। वर्ष 2006 में, 4 जैव उत्पादकों ने टेक्नोक्रेट्स के तौर पर अपनी सेवाएं देनी प्रारम्भ कीं, जिनकी संख्या वर्ष 2007 में बढ़कर 17 और 2008 में बढ़कर 58 हो गयी। इन टेक्नोक्रेट्स के साथ तकनीकों का विस्तार बहुत तेजी से होने लगा। साथ ही इसी क्षेत्र का होने के कारण उनकी स्वीकार्यता एवं उनकी साख भी अधिक है।

फोटो : लेखक

जैविक निवेश उत्पादन इकाई

पंजीकृत किसानों को जैविक खेती के लिए विशिष्ट क्षेत्र आवंटित किये गये। इन छोटे–छोटे क्षेत्रों में किसानों ने कृषि विज्ञान केन्द्र के सहयोग से जैविक खेती करना प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 2006 में 532 पंजीकृत किसानों ने 116.82 हेक्टेयर में जैविक विधि से खेती की और धान, केला, तिल, सूरजमुखी, मूंगफली, चना, उर्द आदि फसलें उगाई गयीं। वर्ष 2007 में जैविक विधि से की गयी खेती का क्षेत्रफल बढ़कर 2269.63 हेक्टेयर हो गया।

आत्म–सम्मान में वृद्धि

अधिकांश जैविक निवेश स्थानीय स्तर पर ही उत्पादित होने के कारण किसानों की निर्भरता बाहरी निवेशों पर घटी। जैविक खाद के तौर पर सर्वाधिक उपयोग वर्मीकम्पोस्ट का हुआ। कार्यक्षेत्र के कुल 44 किसानों ने वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन करना प्रारम्भ किया। उत्पादित वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग वे अपने खेत में करते थे और शेष बची खाद को गांव के ही अन्य किसानों को बेच देते थे। शेष किसानों ने खेत से निकले अपशिष्टों से तैयार खाद का उपयोग करना प्रारम्भ किया। 44 किसानों द्वारा प्रतिवर्ष 399 टन वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन किया जा रहा है।

बहुत से किसानों ने पंचगव्य तैयार किया और जब भी आवश्यक हो कीट नियंत्रण के लिए उसका उपयोग किया। पूरक जैविक निवेश आवश्यकताओं के लिए वर्ष 2006 में पंचगव्य उत्पादन तथा कीट नियंत्रण की 18 इकाईयों की स्थापना की गयी, जो वर्ष 2008 में बढ़कर 56 हो गयी। इस प्रकार वर्ष 2008 आते–आते बड़े पैमाने पर पंचगव्य तैयार होने लगा है। जैविक निवेशों का उपयोग करने से एक तरफ तो निवेश की लागत घटी है और दूसरी तरफ जैविक विधि से उत्पादित उत्पादों का अच्छा मूल्य भी मिलने से वर्ष 2006, 2007 एवं 2008 के दौरान किसानों को क्रमशः रू0 1130, 1250 एवं 1820 रू0 प्रति हेक्टेयर की अतिरिक्त आमदनी हुई। विभिन्न जैविक उत्पादन इकाईयों की स्थापना से रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई और वर्ष 2006 में 142, 2007 में 198 एवं 2008 में 210 अतिरिक्त मानव दिवसों का सृजन हुआ।

> उपभोक्ताओं के बीच जागरूकता निर्माण के उद्देश्य से विभिन्न स्थानों पर जैविक उत्पादों की प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। इस प्रकार जैविक उत्पादों के विपणन के लिए विपणन प्रोत्साहकों के साथ एक बेहतर नेटवर्क भी स्थापित हो गया।

उत्पादकों और उपभोक्ताओं का जुड़ाव

जैविक विधि से की जाने वाली खेती के क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि होने के कारण करूर जिले में जैविक उत्पादों की उपलब्धता भी बढ़ी है। उपभोक्ताओं के बीच

जागरूकता निर्माण के उद्देश्य से विभिन्न स्थानों पर जैविक उत्पादों की प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। इस प्रकार जैविक उत्पादों के विपणन के लिए विपणन प्रोत्साहकों के साथ एक बेहतर नेटवर्क भी स्थापित हो गया। राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित होने वाली बहुत सी प्रदर्शनियों में कृषि विज्ञान केन्द्र ने भी सहभागिता निभाई और जैविक तिल के लिए विशिष्ट बाजार तैयार किया। कृषि विज्ञान केन्द्र के सहयोग से, जैविक तिल एवं जैविक चावल के लिए प्रसंस्करण इकाई भी स्थापित की गयी। प्रमाणीकरण प्रक्रिया इकाई के माध्यम से जिले में प्रसंस्कृत उत्पादों की उपलब्धता बढ़ी है।

निष्कर्ष

कृषि विज्ञान केन्द्रों की स्थापना इसलिए की गयी है ताकि वे ज्ञान और संसाधन केन्द्र के तौर पर अपनी सेवाएं दे सकें। जिससे राष्ट्रीय शोध के साथ प्रसार प्रणाली और किसानों के बीच बेहतर जुड़ाव के माध्यम से जिले की कृषिगत अर्थव्यवस्था को उन्नत बनाया जाये। अपने कार्यों के माध्यम से, कृषि विज्ञान केन्द्र, करूर जिले के किसानों को पर्यावरण सम्मत जैविक अभ्यासों को अपनाने में किसानों की मदद कर रहा है। ऐसा इसलिए संभव हो सका कि इसमें बहुत सी संस्थाओं जैसे– राज्य कृषि विश्वविद्यालय, नेशनल सेण्टर फॉर आर्गेनिक फार्मिंग, कृषिगत एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद विशेषज्ञ विकास अभिकरण, प्रसंस्करण संगठनों आदि ने मिलकर कार्य किया। अब इस क्षेत्र के किसान जैविक पद्धति से खेती करना अपना चुके हैं, जिससे उन्हें अधिक लाभ मिल रहा है और बाहरी निवेशों पर उनकी निर्भरता घटी है। ■

एस वल्लाल कन्नन
कृषि विज्ञान केन्द्र, करूर
ग्राम– पुलुथेरी, पोस्ट– आर.टी.मलाई
तालुक– कुलीतलाई, जिला– करूर
तमिलनाडु
ई–मेल : vallalkannan@yahoo.com

Stakeholders in agroecology
LEISA INDIA, Vol 18, No. 4, Dec. 2016

हमारे साथ विज्ञापन

स्थाई एवं पर्यावरण सम्मत कृषि के विकास हेतु इच्छुक 20 हजार से अधिक लोग लीज़ा इण्डिया पत्रिका से जुड़े हैं। खेती से जुड़े व्यवहारिक अनुभवों को जानने के इच्छुक किसानों, स्वयंसेवी संगठनों, सरकारी अधिकारियों, कर्मचारियों, शोधार्थियों, छात्रों, सरकारी विभागों, बैंकों, शिक्षाविदों आदि तक इस पत्रिका की प्रकाशित व डिजीटल प्रति प्रत्येक त्रैमास में पहुँचती है।

दो दशकों से भी अधिक समय से प्रकाशित लीज़ा इण्डिया पत्रिका अपनी गुणवत्तापूर्ण पाठ्य सामग्री, आकर्षक डिज़ाइन, रंगीन ले–आउट, निरन्तर एवं समय पर प्रकाशित होने के लिए प्रसिद्ध है। यह पत्रिका आठ भाषाओं– अंग्रेजी, हिन्दी, कन्नड़, तेलगू, तमिल, उड़िया, पंजाबी एवं मराठी में प्रकाशित होती है।

हम संगठनों, कम्पनियों एवं विश्वविद्यालयों को कृषि पारिस्थितिकी से सम्बन्धित अपनी सेवाओं, उत्पादों, पाठ्यक्रमों एवं कार्यक्रमों का विज्ञापन देने हेतु आमंत्रित करते हैं। विस्तृत विवरण के लिए leisaindia@yahoo.co.in पर सुश्री रूक्मिणी से सम्पर्क किया जा सकता है।

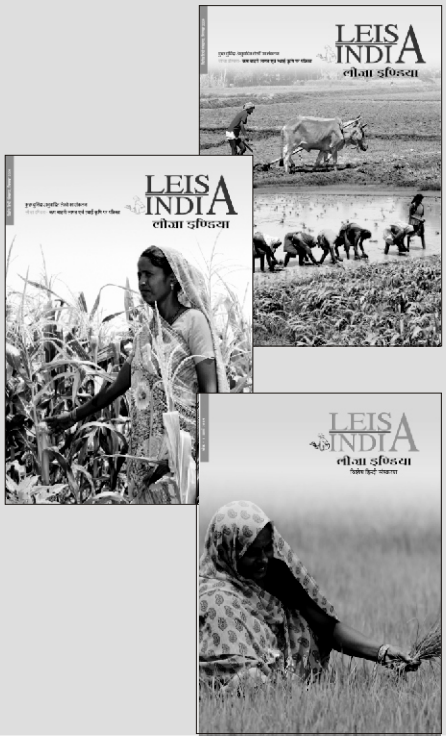

फोटो : लेखक

मालेगाँव ग्राम के 18 एकड़ में विकसित एकीकृत पारिवारिक खेती

कृषि पारिस्थितिकी

जैव विविधता संरक्षण व पारिस्थितिकी पोषण

कुलस्वामी जगन्नाथ जेना

कृषि पारिस्थितिकी खेती को स्थाई बनाने का एक माध्यम है। यह हरित क्रान्ति तथा जीन क्रान्ति द्वारा व्यवसायिक कृषि माडल को बढ़ावा देने का भी एक माध्यम है। तकनीकों के अतिरिक्त, विश्व के खाद्य उत्पादित करने वाले लोगों के लिए एक न्यायोचित खाद्य प्रणाली तैयार करने की दृष्टि से भी कृषि पारिस्थितिकी महत्वपूर्ण है।

दक्षिणी–पश्चिमी उड़ीसा कृषि अर्थ व्यवस्था पर आधारित क्षेत्र है। यहां के 75–80 प्रतिशत लोगों की आजीविका खेती पर निर्भर करती है। यद्यपि कि इस क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, फिर भी बदलती जलवायुविक परिस्थितियों ने यहां की आदिवासी समुदायों के समक्ष खाद्य, आजीविका एवं पारिस्थितिकी सुरक्षा का संकट उत्पन्न कर दिया है। तेजी से हो रहे पर्यावरणीय ह्रास, निर्वनीकरण एवं खाद्य उत्पादन के समक्ष जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के कारण इस क्षेत्र के लोगों की आमदनी पर वर्ष–दर–वर्ष गंभीर प्रभाव पड़ रहा है।

उड़ीसा राज्य की एक अग्रणी संस्था अग्रगामी ने इन मुद्दों पर काम करने का निश्चय किया। इस हेतु संस्था ने उड़ीसा राज्य के 3 जिलों – रायगदा, कोरापुट तथा कालाहांडी के तीन विकासखण्डों – काशीपुर, दसमन्तपुर व तहसील रामपुर के 150 गाँवों में इको–गाँव विकसित करने के विचार पर अमल करना प्रारम्भ कर दिया। कृषि पारिस्थितिकी मॉडलों ने एकल खेती पद्धति का स्थान ले लिया। कृषि की जैव विविधता बढ़ने के कारण लोगों की उपज बढ़ी, जिससे निश्चित तौर पर उन्हें आर्थिक फायदा हुआ। साथ ही उत्पादकता, पोषण एवं कार्यक्षमता बढ़ने से लोगों की खाद्य सुरक्षा एवं सम्प्रभुता में भी उल्लेखनीय योगदान हुआ। कृषिगत गतिविधियों में महिलाओं को भी पुरूषों के साथ बराबरी का दर्जा मिलने लगा।

फोटो : लेखक

विविध फसलों को लेकर प्रसन्न एक लड़की

विविधतापूर्ण कृषि प्रणाली को अपनाने के लिए कृषि–पारिस्थितिकी का उपयोग रणनीतिक तौर पर योजनाबद्ध तरीके किया गया। उदाहरणस्वरूप, मृदा संरक्षण के लिए पहाड़ी ढलानों के किनारे बांध बनाना तथा वनस्पतियों का बांध तैयार करने जैसी गतिविधियां प्रारम्भ की गयीं। समुचित जल निकासी हेतु गुली एवं रिवाइन का निर्माण किया गया। जंगली प्रजातियों के साथ–साथ फलदार वृक्षों जैसे– आम, बादाम, लीची एवं अमरूद के पौधों को भी लगाने पर जोर दिया गया। वृक्षारोपण का यह कार्य 30 डिग्री से ऊपर वाले ढलान पर विशेष रूप से किया गया। तीनों विकासखण्डों के 150 गाँवों में खेती में नवीन व परिष्कृत उपकरणों का उपयोग किया गया, भूमि का सर्वेक्षण कर

कृषि पारिस्थितिक अभ्यासों के लाभ

कृषि पारिस्थितिक अभ्यास		लाभ
जीरो टिलेज खेती	:	इससे मृदा की गुणवत्ता और स्वास्थ्य उन्नत होता है। जैविक संघटकों के साथ–साथ मृदा के अन्दर जल रिसने तथा जल धारण की क्षमता में भी वृद्धि होती है।
एकीकृत पोषण प्रबन्धन	:	वर्मी कम्पोस्ट, पिट कम्पोस्ट, तरल खाद, हरी खाद एवं नाइट्रोजन स्थिर करने वाली फसलों का उपयोग कर रसायनिक उर्वरकों के उपयोग को कम किया जाता है।
मृदा एवं जल सरक्षण	:	मृदा क्षरण में ह्रास होता है, मृदा उर्वरता में वृद्धि होती है और ट्रेस हेतु नव पहल बडिंग, खाईनुमा बांध तथा नेकलेस बडिंग के माध्यम से मृदा में नमी का संरक्षण होता है।
अन्तः खेती व मिश्रित खेती	:	इस विधि से मृदा और फसल दोनों की उत्पादन तथा उत्पादकता दोनों में वृद्धि होती है। इसके साथ ही यह किसान को संकट के दिनों में भी अच्छी आय देती है।
फसल के साथ पशुधन का एकीकरण	:	इससे अच्छा बायोमॉस मिलता है और अधिकतम पोषण के पुनर्चक्रीकरण तथा सशक्तिकरण के माध्यम से किसान अपनी आय में वृद्धि करता है।
बीज व अनाज बैंक	:	इस गतिविधि के कारण किसानों को पैसे लेने के लिए साहूकारों अथवा कर्जखोरी पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। जिससे उनके अन्दर स्व स्थाईत्व की भावना बढ़ती है और वह जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटते हुए अपनी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

उसके हिसाब से बसाहट की प्रक्रिया अपनायी गयी। वर्ष 2010 में, 1800 किसानों द्वारा कुल 11700 फलदार वृक्षों का रोपण किया गया।

जुलाई 2016 के अन्त तक, 6000 से अधिक परिवारों ने पारिवारिक कृषि को अपना लिया। परिणामतः 2013–14 और 2015–16 के बीच कृषि योग्य भूमि मे 120 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई, जिस पर पारिवारिक खेती की जा रही है। आमतौर पर यहां पारिवारिक उपभोग के लिए अनाजों और दलहन की खेती की जाती थी और अधिक होने पर उसे बेचकर आमदनी प्राप्त की जाती थी, जिससे बच्चों की शिक्षा एवं उनके स्वास्थ्य पर होने वाले खर्चों को पूरा किया जा सके।

मुख्य प्रभाव

यह सिद्ध हो चुका है कि कृषि उत्पादन में वृद्धि के माध्यम से छोटे किसानों को लाभान्वित करने हेतु कृषि पारिस्थितिकी एक जैविक समाधान है। यहां निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किसानों की आमदनी, उनके बेहतर स्वास्थ्य तथा पर्यावरण को उत्तम बनाने में कृषि पारिस्थितिकी द्वारा किये जाने वाले उल्लेखनीय योगदानों के विषय में जानने का प्रयास करेंगे।

- **उत्पादकता और फसल विविधता में वृद्धि**
  बहु फसली तथा पारम्परिक और देशज अभ्यासों को अपनाते हुए क्षेत्र के आदिवासी छोटी जोत के किसान अब मृदा ह्रास तथा मृदा उर्वरता को जांचने में सक्षम हो चुके हैं। उत्पादकता में वृद्धि हुई है और 3–7 वर्ष तक कृषि पारिस्थितिकी का उपयोग करने के बाद किसान पहले की अपेक्षा दोगुना उपज प्राप्त कर रहे हैं।

- **आजीविका सुरक्षा**
  कृषि–पारिस्थितिकी गतिविधियों के माध्यम से छोटे किसानों की आय में बड़े पैमाने पर वृद्धि हो रही है। बाहरी निवेशों पर किसानों की निर्भरता अब बहुत अधिक नहीं है। सिंचाई के नये अभ्यासों तथा खेत से निकले अपशिष्टों से तैयार जैविक खाद का उपयोग करने के कारण उनकी उत्पादक लागत में कमी आ रही है। छोटे किसान अब आय उपार्जन के लिए

> जागरूकता एवं दक्षता बढ़ने के कारण ये किसान अब खाद्य प्रणाली, व्यवसायिक खेती और व्यापार नीतियों के अन्तर्सम्बन्ध को समझने में सक्षम हो रहे हैं।

बदलाव की बयार लाती सुमानी झोदिया

सुमानी झोदिया उड़ीसा के रायगदा जिले के काशीपुर विकासखण्ड में सिरीगुदा गांव के झोदिया आदिवासी समुदाय की 62 वर्षीय महिला हैं। पहले सुमानी झोदिया पहाड़ी की ढलानों पर हस्तान्तरित खेती करती थीं। वह अपने घरेलू उपभोग के लिए रागी और धान उगाती थीं। लेकिन अब उनके परिवार की स्थिति में बदलाव आया है और इस बदलाव का कारण था– पिछले कई वर्षों से चली आ रही कृषि पद्धति में बदलाव कर कृषि–पारिस्थितिकी अभ्यासों को अपनाना। सुमानी झोदिया खाद्य सुरक्षा के लिए बहु फसली अभ्यास को अपनाती हैं। मिश्रित खेती से एक वर्ष के अन्दर फसलों को बेहतर तरीके से बढ़ने में मदद मिलती है। इनकी एक बड़ी समस्या जलापूर्ति की थी, जो पूरे गाँव की समस्या थी। इस समस्या से निपटने के लिए गाँव के नौजवान एवं वृद्ध किसानों ने अपने खेतों के निकट से बहने वाली जलधारा को मोड़ने के लिए नहर की खुदाई की। इससे उन्हें वर्ष भर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो गयी। नहर में वर्षा जल का संग्रहण होने से वहां के भूमिगत जलस्तर को रिचार्ज होने में सहायता मिलती है।

अब सुमानी झोदिया सब्ज़ियां और फल उगाती हैं और उनके पास आम की छह प्रजातियों की उच्चीकृत नर्सरी तैयार है। वे काशीपुर के स्थानीय बाजार में अपने उत्पादों को बेचती हैं। वर्ष 2015 में, उन्होंने ऊंचे स्थानों पर आम की छह प्रजातियों के 5000 पौधों को उगाया और वर्ष 2016 में 6000 पौधों को रू0 25 प्रति पौधा की दर से बेच दिया, जिससे उन्हें रू0 150000.00 की आमदनी हुई। अब उनके परिवार को वर्ष भर भोजन मिलता है। गांव में स्थापित बीज/अनाज बैंक में तीन वर्षों से एकत्र अनाज से पूरे गांव के सभी 56 परिवारों को वर्ष भर भोजन दिया जा सकता है।

सुमानी झोदिया संतुष्टि भरे मुस्कान के साथ कहती हैं कि–''मैं अब अपने खेत में बहुत सी सब्ज़िया एवं फल उगाती हूं। हम अपनी खाद यहीं बनाते हैं और हमारे पास अच्छी जलापूर्ति प्रणाली है। मेरे पोते–पोतियों को हमारी तरह भूख का सामना नहीं करना पड़ता है और वे पोषण तत्वों से भरपूर भोजन करते हैं। अब मेरे एवं मेरी अगली पीढ़ियों के लिए हमारे पास आजीविका के स्थाई स्रोत हैं।''

पशुपालन भी करने लगे हैं। 150 गाँवों के लगभग 1500 किसान पशुधन खरीदने, जमीन तैयार करने तथा सिंचाई प्रणाली को उन्नत बनाने के लिए पैसों की बचत करने लगे हैं ताकि आमदनी का ठोस जरिया तैयार हो सके और उनकी आजीविका सुरक्षित रहे। यहां तक कि फसल की क्षति होने की स्थिति में भी, किसान अब कर्ज के मकड़जाल में नहीं फंस रहे हैं। और अन्त में, यह भी सिद्ध हो चुका है कि कृषि–पारिस्थितिकी प्रणाली अपनाने की वजह से किसानों की आत्महत्या की दर में भी कमी आयी है।

- **खाद्य सम्प्रभुता**
  खाद्य सुरक्षा से छोटे किसानों का बेहतर स्वास्थ्य, न्याय एवं आत्मसम्मान सुनिश्चित होता है। कृषि–पारिस्थितिकी जमीन, जल, जंगल, बीज एवं आय सहित खेती के प्रत्येक पहलुओं पर किसानों को नियंत्रण प्रदान करता है। जागरूकता और दक्षता बढ़ने के कारण ये किसान अब खाद्य प्रणाली, व्यवसायिक खेती और व्यापार नीतियों के अन्तर्सम्बन्ध को समझने में सक्षम हो रहे हैं।

उपसंहार

छोटे किसानों के लिए कृषि–पारिस्थितिकी एक विश्वसनीय कृषिगत गतिविधि है। यह दृष्टिकोण न केवल छोटे किसानों को स्थाईत्व प्रदान करती है, वरन् हरित क्रान्ति और जीन क्रान्ति को पीछे धकेलते हुए व्यवसायिक कृषिगत मॉडल का विरोध करने का एक रास्ता भी प्रदान करती है। हमें विश्व की भूख को समाप्त करने के लिए अधिक खाद्य उपजाने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि हमें तो विश्व के लिए खाद्य उपजाने वाले छोटे, मझोले किसानों के लिए एक न्यायसंगत खाद्य प्रणाली तैयार करने की जरूरत है। छोटे किसानों की जरूरत बड़े पैमाने पर कृषि या वैश्विक बाजार नहीं हैं। वरन् उनकी वास्तविक जरूरत तो जल, जंगल, जमीन और आधारभूत संरचनाओं तक बेहतर पहुंच बनानी है और इसकी यात्रा पहले ही शुरू हो चुकी है।

■

कुलस्वामी जगन्नाथ जेना
परियोजना समन्वयक– इको ग्राम विकास
अग्रगामी,
काशीपुर, रायगदा, उड़ीसा, भारत
वेबसाईट : agragamee.org
ई–मेल : kulaswami13@gmail.com

Agroecology- Measurable and sustainable
LEISA INDIA, Vol 18, No.3, Sept. 2016

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2000-2016

V.2, No. 1, 2000 - Desertification
V.2, No. 2, 2000 - Farmer innovations
V.2, No. 3, 2000 - Farming in the forest
V.2, No. 4, 2000 - Monocultures towards sustainability

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V.14, No.4, 2012- Combating Desertification

V.15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V.15, No.2, 2013- Farmers and market
V.15, No.3, 2013- Education for change
V.15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V.16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V.16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V.16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V.16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

V.17, No. 1, 2015- Soils for life
V.17, No. 2, 2015- Rural-urban linkages
V.17, No. 3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V.17, No. 4, 2015- Women forging change

V.18, No. 1, 2016- Co-creation to knowledge
V.18, No. 2, 2016- Valuing underutilised crops
V.18, No. 3, 2016- Agroecology-Measurable and sustainable
V.18, No. 4, 2016- Stakeholders in agroecology

छोटे किसानों की बहु आवश्यकताओं को पूरा करना

एम.एन कुलकर्णी एवं एस.एम. हीरेमथ

कृषि पारिस्थितिकी को बढ़ावा देने में स्वैच्छिक संगठनों की प्रमुख भूमिका रहती है। विकास के कार्यों में किसानों को सहभागी बनाकर, बायफ ने कर्नाटक के 505 गांवों के 21000 किसानों की आजीविका सुरक्षा को उन्नत किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मुख्य निवेशों जैसे बीज, रोपण सामग्रियों एवं जानकारी आदि पर पहुँच बढ़ाकर अस्थाई खेती को स्थाईत्व की ओर ले जाया जा सकता है।

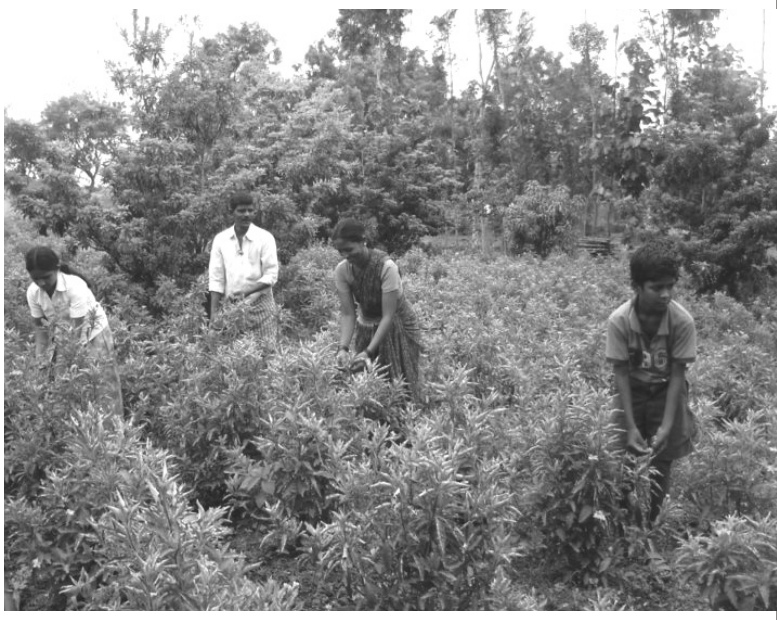

फोटो : लेखक

वृक्ष आधारित खेती प्रणाली के साथ पारिवारिक खेती

बायफ द्वारा छोटे व मझोले किसानों को लेकर फलदार वृक्षों, चारा वृक्षों, बायोमॉस प्रजातियों, इमारती एवं ईंधन की लकड़ियों सहित वानिकी वृक्षों, मृदा एवं जल प्रबन्धन के साथ मेड़ों पर चारा की बुवाई को एकीकृत करते हुए वर्ष 1985 में वृक्ष आधारित खेती प्रणाली का प्रारम्भ किया गया। वृक्ष आधारित खेती प्रणाली को पायलट परियोजना के रूप में मैसूर जिले के हुनसूर तालुक के चयनित गाँवों में 1985 से 1990 तक क्रियान्वित किया गया।

क्या है वृक्ष आधारित खेती प्रणाली?

वृक्ष आधारित खेती प्रणाली वाड़ी के तौर पर भी प्रचलित है, जिसका गुजराती में अर्थ ''बागीचा'' होता है। इस प्रणाली में कम लागत वाली व पर्यावरण सम्मत गतिविधियों जैसे – औद्यानिक, वानिकी, चारा वृक्षों व चारा घासों का रोपण, पोषणयुक्त खाद बनाने की तकनीक तथा बीमारियों एवं कीटों के प्रबन्धन हेतु प्राकृतिक उपायों को अपनाना, दुधारू जानवरों तथा छोटे जानवरों को पालना व मृदा एवं जल संरक्षण पद्धतियां आदि शामिल हैं। इस अभ्यास के माध्यम से, किसान प्रति एकड़ आम, इमली, अखरोट, अमरूद आदि 35 से 40 प्रकार के फल की प्रजातियों तथा 8 से 10 प्रकार की वानिकी प्रजातियों के पौधों को लगाने हेतु उत्साहित हुए। फलदार वृक्षों को फसल उगाने वाले खेतों में लगाया जा सकता है अथवा इन्हें अन्दर की मेड़ों व बाहरी मेड़ों पर भी लगाया जा सकता है। फलदार वृक्षों में रोपण के 5वें वर्ष से फल आना प्रारम्भ हो जायेगा और किसानों को आमदनी होने लगेगी।

वानिकी वृक्षों को खेतों के सभी मेड़ों तथा बाहरी चहारदीवारी पर लगाया जा सकता है। वानिकी पौधों में जलौनी लकड़ी वाली प्रजातियों जैसे बबूल, कीकर, जंगली दालचीनी, गिरिपुष्पा, इमारती लकड़ियों जैसे – सागौन, बलूत, शीशम, बबूल, सुबबूल आदि बेहतर गुणवत्ता वाले चारा वृक्ष हैं, जिनसे दुग्ध पालन गतिविधि को स्थाई बनाया जा सकता है। वानिकी वृक्ष अपने रोपण के चौथे वर्ष से बायोमॉस और जलौनी लकड़ी का उत्पादन प्रारम्भ कर देते हैं। वानिकी वृक्षों से उत्पन्न बायोमॉस के उपयोग से तैयार वर्मीकम्पोस्ट को अपने खेतों में उपयोग किया जा सकता है। इससे रसायनिक उर्वरकों का उपयोग कम करने में सहायता मिलेगी और इस प्रकार वातावरण में नाइट्रस आक्साइड का उत्सर्जन कम होगा। वृक्षारोपण के पाँचवे वर्ष से पर्याप्त मात्रा में जलौनी लकड़ी मिलने लगेगी। इससे परिवार को खाना बनाने के लिए जलौनी लकड़ी मिलेगी और जंगलों से लकड़ी नहीं लानी पड़ेगी। इस प्रकार, 5–6 वर्षों की अवधि में, वृक्ष आधारित खेती प्रणाली के माध्यम से खेत विविधतापूर्ण हो जायेंगे, लोगों की खाद्य सुरक्षा बढ़ेगी, पशुओं के लिए चारा की उपलब्धता होगी और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने हेतु लोगों में क्षमता बढ़ेगी।

यह भी पाया गया कि वृक्ष आधारित खेती प्रणाली अथवा जैविक खेती के अन्तर्गत वातावरण से प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर 733–3000 किग्रा0 अथवा इससे अधिक तक कार्बन अवशोषित होगा। जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण के लिए मृदा में कार्बन अवशोषण की प्रक्रिया का बढ़ना एक

फोटो : लेखक

वृक्ष आधारित खेती प्रणाली में पेड़, फसलें एवं चारा

आवश्यक तत्व है। वृक्ष आधारित खेती प्रणाली में मृदा में कार्बन अवशोषण की प्रक्रिया को बढ़ाने से आधुनिक कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम होगा।

एक नये विचार का एकीकरण

खेती प्रणाली में वृक्षों का समावेश करने से एक तरफ फसल का नुकसान होने पर भरपाई होने के लिए बीमा के तौर पर ये वृक्ष रहते हैं तो वहीं दूसरी तरफ पर्यावरण का संरक्षण करने में भी मदद मिलती है। इस प्रकार, वृक्ष आधारित खेती प्रणाली खेतिहर समुदाय तथा पर्यावरण दोनों के हित में बहुत अच्छी है। फिर भी, किसान ऐसा नहीं सोचते, क्योंकि वृक्षों से उपज पाने के लिए उन्हें लम्बा इन्तजार करना पड़ता है। इसलिए, वृक्ष आधारित खेती प्रणाली की तरफ किसानों को उत्प्रेरित करने हेतु क्रियान्वयन संस्था की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

वृक्ष आधारित खेती प्रणाली से होने वाले आर्थिक एवं पर्यावरणीय लाभों के साथ इस अवधारणा को समझाने हेतु गांव स्तर पर बैठकें एवं केन्द्रित समूह चर्चाएं आयोजित की गयीं तथा लोगों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया गया। वृक्ष आधारित खेती प्रणाली को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने वाले स्थानों पर किसानों का भ्रमण आयोजित कर वहां के किसानों के साथ अनुभवों का आदान–प्रदान किया गया। इसके बाद गढ्ढा खोदने, गढ्ढा भरने तथा वृक्षारोपण पद्धतियों का प्रदर्शन किया गया इसके साथ ही अन्य गतिविधियों जैसे बेसिन तैयार करने, शेडिंग, मल्चिंग तथा बाद में देख–भाल गतिविधियों का प्रदर्शन भी किसानों के समक्ष किया गया। रोपण कार्य समय पर सुनिश्चित करने के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले पौधरोपण सामग्रियों की आपूर्ति भी सुनिश्चित की गयी। रोपण क्षेत्र को छुट्टा पशुओं से बचाने के लिए खेत के आस–पास कंटीले तारों का बाड़ भी तैयार किया गया। कीट एवं व्याधि प्रबन्धन के लिए ग्राम स्तर पर प्रशिक्षण

बाक्स 1 : वृक्ष आधारित खेती प्रणाली में इरफान ने अपना भविष्य देखा

31 वर्षीय इरफान कमादोली हवेरी जिले के हिरबेन्दीगिरी गाँव में अपने परिवार के साथ रहते हैं। उनके पास तीन एकड़ सिंचित भूमि है। इरफान पहले गोवा में रहकर निर्माण कार्य करते थे। आठ वर्ष पहले वह अपने गाँव वापस लौट आये। लेकिन खेती के लिए पानी की निश्चितता न होने के कारण अभी भी उनके सामने आजीविका का संकट था। उन्होंने अपने 3 एकड़ खेत में वार्षिक रू0 30,000.00 की बाजरा, सांवा, कोदो एवं मूंगफली उगाना प्रारम्भ किया। उनके पास बैलों की एक जोड़ी और दो गाय हैं। वे चारा तथा अपने खेत हेतु खाद बनाने के लिए फसल अवशेषों पर निर्भर करते हैं। उन्हें खेती में 6 माह तक ही काम मिलता है। शेष 6 माह अपनी आजीविका चलाने के लिए उन्हें मजदूरी करनी पड़ती है।

प्रारम्भ में, उन्होंने वृक्ष आधारित खेती प्रणाली करने से मना कर दिया। उनका कहना था कि ''मैं इन पौधों की पूरे वर्ष देख–भाल नहीं कर सकता, क्योंकि मैं सिर्फ 6 माह ही खेत पर आता हूँ। बाकी के 6 माह मुझे मजदूरी करनी पड़ती है।'' फिर भी अन्ततः वर्ष 2010 में उन्होंने इस परियोजना से जुड़ने का निश्चय किया। परियोजना की तरफ से उन्हें आम की कलमे, वानिकी पौधों की नर्सरी एवं चारा पौधों के बीजों की सहायता दी गयी। संस्था द्वारा प्राप्त तकनीकी जानकारियों को अपनाते हुए इरफान ने आम के 120 पौधों की पूरी तरफ देख–भाल की। गर्मियों के दिनों में सुरक्षित सिंचाई करने हेतु वे गाँव से खेत तक बर्तनों में पानी ढोकर लाये और पानी का टैंक किराये पर लिया।

अब उनके कठिन श्रम ने फल देना प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 2014 से वे बाजार में अच्छी गुणवत्ता वाले आमों को बेचने लगे हैं। प्रतिवर्ष फलों को बेचने से उन्हें औसतन रू0 30000.00 की आमदनी हो जाती है। साथ ही वे अन्तः फसल के तौर पर मक्का और सब्ज़ियां भी उगा लेते हैं।

अब, वृक्ष आधारित खेती प्रणाली ने उनकी आशाओं को पुनर्जीवित कर दिया है। वे प्रतिदिन अपने खेत पर जाने लगे हैं। उनका कहना हैं– ''वहां प्रतिदिन कुछ न कुछ काम रहता है और खेतों की हरियाली मुझे प्रसन्नता देती है।''

जैव अवशेषों की उपलब्धता बढ़ने से किसान भेड़ अथवा बकरी जैसे छोटे जानवरों को पालने के लिए उत्प्रेरित हुए हैं। कुछ स्थानों पर तो दुधारू पशुओं का पालन भी बढ़ा है।

आयोजित किये गये एवं नियमित फालोअप किया गया। इसके साथ ही व्यापक स्तर पर लाभान्वित होने के लिए बाजारों तथा राज्य सरकार से जुड़ाव स्थापित करने में भी मदद की गयी।

प्रभाव

वृक्ष आधारित खेती प्रणाली वाले खेतों में मृदा उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। परियोजना आच्छादित गाँवों में वृक्षों की संख्या बढ़ने से सूक्ष्म जलवायु में सुधार हुआ है। यह भी अनुभव है कि जिन खेतों में वृक्ष आधारित खेती प्रणाली अपनाई गयी है, वहां की जलवायु ठण्डी है।

वृक्ष आधारित खेती प्रणाली, मृदा एवं जल संरक्षण, जैविक खेती एवं पशुधन में वृद्धि के कारण लोगों की पारिवारिक आमदनी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। औसतन, वृक्षारोपण के पाँचवें वर्ष से किसान रू0 10,000.00 से 12,000.00 प्रति एकड़ की आमदनी प्राप्त कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त उसी भूमि में अन्तः खेती के रूप में अतिरिक्त फसलें भी ली गयीं।

मेड़ों और बंजर भूमियों पर चारा वृक्षों, झाड़ियों एवं घासों को लगा देने से चारा उपलब्धता में भी सुधार हुआ है। इससे किसान छोटे जानवरों जैसे – भेड़ या बकरी पालन के साथ–साथ एक या दो दुधारू जानवर भी पालने लगे हैं।

वृक्ष आधारित खेती प्रणाली अपनाने वाले परिवारों को अब अपने ही खेत से पर्याप्त मात्रा में जलौनी लकड़ी मिलने से घर की महिलाओं का कार्यबोझ घटा है। अब उन्हें लकड़ी इकट्ठा करने हेतु आस–पास के जंगलों और गाँव के सार्वजनिक जमीनों तक नहीं जाना पड़ता है और जंगलों पर दबाव भी कम पड़ रहा है।

हितधारक के रूप में किसान की भूमिका को बढ़ाना

बाएफ ने विभिन्न अनुदानदाताओं जैसे– डीएएनआईडीए, कपार्ट, भारत सरकार, कर्नाटक सरकार, नाबार्ड, देशपाण्डे फाउण्डेशन आदि के वित्तीय सहयोग से वृक्ष आधारित खेती प्रणाली को क्रियान्वित किया। इन सभी कार्यक्रमों में, अनुदान देने वाली संस्था, क्रियान्वयन करने वाली संस्था और किसान तीनों ने मिलकर काम किया। वर्षों बाद, यह स्पष्ट हो सका कि सभी कार्यक्रमों में नियोजन तथा क्रियान्वन में किसानों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

परियोजना की पाइलट अवधि के दौरान, प्रत्येक नये विचार को क्रियान्वित करने में किसानों को सहायता प्रदान की गयी और विचार या कार्य के असफल रहने पर पर्याप्त मुआवजा भी दिया गया। वृक्ष आधारित खेती प्रणाली जैसे गढ्ढा खोदने, वृक्षारोपण करने, बाद में देख–भाल करने, खेत में मेड़बन्दी करने, खेत की देख–भाल करने, चारों तरफ बाड़ा तैयार करने तथा गर्मियों में पौधों को पानी देने के बदले किसानों को बहुत सी नगद धनराशि प्रोत्साहन के तौर पर दी गयी। इसके अतिरिक्त, एक्सपोजर, प्रशिक्षण एवं खेत पर प्रदर्शन इत्यादि गतिविधियों में भी व्यय किया गया। इस प्रकार परियोजना की पाइलट अवधि के दौरान प्रति एकड़ रू0 30,000.00 की लागत आई।

कार्यक्रम में किसानों का स्वामित्व बढ़ाने के लिए, बाएफ

बाक्स 2 : मिश्रित खेती से मिला इनाम

श्री गंगइया विभूतिमथ, हवेरी जिले के सवनौर तालुक में अवस्थित गाँव मदापुर के सीमान्त किसान हैं। इनके पास मात्र डेढ़ एकड़ शुष्क भूमि है। वर्ष 2008 के पहले, वे अपनी भूमि पर वर्ष में केवल एक बार बाजरा, मक्का, मिर्च एवं दलहन जैसी फसलें वर्षा आधारित प्रणाली के तहत् लेते थे। 2008 के दौरान, उन्होंने मिश्रित खेती प्रणाली अपनाई और विविधीकृत खेती करना प्रारम्भ कर दिया। इसके अन्तर्गत उन्होंने चीकू, आम, नीबू, अमरूद एवं करी पत्ता को लगाया। वृक्षारोपण सामग्रियों के लिए उन्हें देशपाण्डे फाउण्डेशन द्वारा सहायतित समृद्धि परियोजना से सहायता प्रदान की गयी।

उन्होंने गर्मियों के दौरान सुरक्षात्मक सिंचाई करते हुए वृक्षों की देख–भाल की। आज उनकी भूमि पर चीकू के 41 वृक्ष, करी पत्ता के 70 पौधे, आम के 8 पौधे तथा नीबू के 6 पौधे हैं। उन्होंने अपने उसी खेत में एस्टर एवं कनकाम्बरा जैसे फूलों व चारा को अन्तः फसल के तौर पर भी लिया। वर्ष 2013 से वे लगातार औद्यानिक वृक्षों को लगाते चले आ रहे हैं। वर्ष 2015 के दौरान उन्हें चीकू और अमरूद के फल बेचने से रू0 10000.00 की आमदनी हुई। फूलों को बेचकर उन्हें प्रति माह औसतन रू0 20,000.00 की आमदनी होती है। वे अपने फूलों को मदापुर गाँव से 10 किमी0 सवनौर के बाजार में बेचते हैं। कुल मिलाकर वे सालाना रू0 1.8 लाख कमाते हैं। यह आमदनी उन फसलों के अतिरिक्त है, जो वह अपने घरेलू उपभोग में लाते हैं। गंगइया मुस्कराते हुए कहते हैं कि–''मिश्रित खेती से होने वाली बेहतर आमदनी से हम अपनी बेटी की शादी में आने वाले खर्च को पूरा कर पाये।''

को समय–समय पर अपनी रणनीतियां बदलनी पड़ीं। 1995 के बाद से किसानों को दिये जाने वाले नगद प्रोत्साहन राशि में कमी की जाने लगी। लागत साझेदारी के विचार को सामने रखते हुए वर्ष 1995 के बाद से परियोजना क्रियान्वयन के लिए किसानों से वस्तु अथवा नगद के रूप में हिस्सेदारी ली जाने लगी।

धीरे–धीरे, किसानों ने कुछ–कुछ गतिविधियों जैसे गढ्ढा खोदना, वृक्षारोपण, बाद में देख–भाल करने आदि कामों को स्वयं से करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ कार्यक्रमों में, किसानों ने प्रति एकड़ रू0 500.00 का नगद अंशदान दिया और जो इस योगदान को नहीं दे पाये, उन्होंने खेत पर श्रम किया। आज, वृक्ष आधारित खेती प्रणाली को अपनाने की लागत घटकर प्रति एकड़ रू0 7000.00 रह गयी है। इसमें मानव श्रम एवं प्रशासनिक खर्च भी शामिल हैं।

अब हम उस स्थिति में पहुंच चुके हैं, जहां अनुदानित दर पर बेहतर गुणवत्ता वाले पौधरोपण सामग्रियों, एक्सपोजर एवं उत्प्रेरित करने जैसे महत्वपूर्ण निवेशों के माध्यम से वृक्ष आधारित खेती प्रणाली को विस्तारित किया जा सकता है। इस मॉडल का बेहतर प्रदर्शन किया गया और उसे पूरे कर्नाटक में स्वीकारोक्ति मिली है। नाबार्ड ने जनजाति विकास अनुदान के अन्तर्गत पूरे देश में इस माडल को दुहराया है। भारत सरकार के जनजाति मामले विभाग ने भारत के जनजातीय इलाकों में वाड़ी के क्रियान्वयन के लिए बाएफ को एक सन्दर्भ संस्था के तौर पर मान्यता प्रदान की है।

■

एम.एन. कुलकर्णी
बाएफ
कुसुमनगर धारवाड़
कर्नाटका

Stakeholders in agroecology
LEISA INDIA, Vol 18, No. 4, Dec. 2016

मौसम आधारित सूचना ने खेती बचाई

ग्राम चिकनिया डीह, जनपद सन्त कबीर नगर के मेहदावल विकास खण्ड का पैक्स परियोजना अन्तर्गत एक गाँव है, जहां लोगों की आजीविका का मुख्य साधन खेती है। इस गाँव में बड़े पैमाने पर सब्ज़ी की खेती होती है और लोग गाँव के साथ–साथ निकटस्थ बाजार सहजनवां, जसवल एवं पीपीगंज में उसकी बिक्री करते हैं। इसी गाँव की रहने वाली श्रीमती लालदेई पत्नी श्री रामहित मौर्या पैक्स परियोजना से वर्ष 2012 में जुड़ी और परियोजना की विभिन्न गतिविधियों में सक्रियता से भाग लेकर समझ विकसित करती रहीं।

मौसम सम्बन्धी अनिश्चितता तथा इससे होने वाले कृषिगत नुकसान को देखते हुए जी0ई0ए0जी0 द्वारा मौसम आधारित सूचनाएं मोबाइल के माध्यम से किसानों तक पहुँचाने की प्रक्रिया शुरू की गयी और शुरूआत में परियोजना क्षेत्र के प्रत्येक गाँव से मास्टर ट्रेनर एवं माडल फार्मर ही इस तरीके की सूचनाओं को प्राप्त करते थे।

वर्ष 2013 अक्टूबर में ये अपने डेढ़ बीघा खेत में आलू तथा मटर की बुवाई करने की योजना बना रही थीं। दिनांक 12–13 अक्टूबर, 2013 को चिकनिया डीह की मास्टर ट्रेनर शकुन्तला के दरवाजे पर श्रीमती लालदेई और चिकनिया डीह के माडल फार्मर के पति श्री सत्यनारायण दोनों लोग बैठकर आलू की बुवाई के बाबत बात कर रहे थे। इनकी बात–चीत को सुनकर मास्टर ट्रेनर ने इन्हें जानकारी दी कि गोरखपुर एनवायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप से मौसम सम्बन्धी सूचना आयी है और इसके आधार पर 15–16 अक्टूबर, 2013 को अधिक बारिश होने की संभावना है।

इनसे प्राप्त सूचना को मानते हुए श्रीमती लालदेई ने अपनी आलू एवं मटर की बुवाई टाल दी, जिससे इनका नुकसान बच गया। अगर पैसे में देखें तो डेढ़ बीघा खेत में बुवाई के लिए 4.5 कुन्तल आलू 20 रू0 की दर से खरीदी थी और एक बीघा के लिए मटर का बीज 16 किग्रा0 80 रू0 की दर से खरीदा तो इस प्रकार

4.5 कु0 आलू X 2000.00 / कु0 = रू0 9000.00

16 किग्रा अर्किल मटर X 80रू0 / किग्रा= रू0 1280.00

अर्थात् लालदेई का कुल 10280.00 रू0 का नुकसान होने से बच गया।

जबकि दूसरी तरफ वहीं बैठे हुए श्री सत्यनारायण ने सूचना पर विश्वास न करते हुए अपने एक बीघा खेत में आलू की बुवाई कर दी, जिससे उन्हें लगभग 6000.00 रू0 का नुकसान हुआ।

स्रोत : गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप

अकृषित खाद्य
छुपा हुआ खजाना

अंशुमान दास

बहुत से कारणों की वजह से झारखण्ड में पहाड़िया आदिवासियों के भोजन से जंगलों से मिलने वाले खाद्य पदार्थों का हिस्सा कम हो चला है, जिससे उनकी खाद्य सुरक्षा एवं पोषण पर व्यापक असर पड़ा है। अकृषित खाद्य पदार्थों की सुरक्षा, संरक्षण, प्रसंस्करण आदि विभिन्न प्रकार की पहलों के माध्यम से उन्हें पुनः मुख्य धारा में शामिल करने तथा समुदाय की खाद्य विविधता को उन्नत बनाने में मदद मिली है। साथ ही साथ भूख एवं कुपोषण की समस्या से निपटने में भी सहायता मिली है।

फोटो : लेखक

जंगल से इकट्ठा किये गये फल

यह जनवरी की एक सुबह थी। धुंधली पहाड़ियों के ऊपर आकाश में सूरज बदलते मूड के साथ उभर रहा था। मैंने संथाल गाँव को पार किया और झारखण्ड में पाकुर जिले के लितिप्रा विकासखण्ड में पहाड़ी की चोटी पर बसे पहाड़िया गाँव कुतलो पाहार तक पहुंचने के लिए आगे बढ़ना प्रारम्भ किया। यह गाँव पहाड़िया आदिवासी समुदाय बहुल गाँव है। जैसा कि नाम से ही पता चलता है, पहाड़िया राजमहाल पहाड़ियों के पहाड़ी क्षेत्रों में बसी एक पहाड़ी जनजाति है। इन पहाड़िया जनजातीय समुदायों की आजीविका का मुख्य स्रोत हस्तान्तरित खेती और पारम्परिक वन आधारित अर्थव्यवस्था है।

एक घण्टे चलने के बाद मैं गाँव में पहुँचा। वहां पर ग्रामीणों से बात–चीत के दौरान मुझे वहां की प्रचलित प्रथाओं के बारे में पता चला। उन्होंने बताया कि वे पहाड़ों पर उगी झाड़ियों को जलाने एवं सफाई करने के बाद चना की खेती करते हैं। इसके साथ ही वे अरहर एवं मक्का की मिश्रित खेती भी करते हैं। पहाड़िया आदिवासी खेती हेतु बीज के लिए स्थानीय स्तर पर ऋण देने वाले महाजनों तथा बाजार पर निर्भर करते हैं। ये महाजन आवश्यक वस्तुओं जैसे चावल, आलू, प्याज, मिर्च आदि को बेचने या बांटने का काम भी करते हैं। यद्यपि कि पहाड़िया जनजाति के लिए महाजनों से कोई खतरा नहीं है और ऐसा शायद इसलिए है, क्योंकि बाहरी दुनिया से उनका सम्पर्क स्थापित करने का एक मात्र जरिया ये महाजन ही हैं।

चर्चा के दौरान लोगों ने यह भी साझा किया कि अब वे जंगल, जंगल आधारित खाद्य एवं उससे जुड़ी परम्पराएं खोते जा रहे हैं। इसके लिए उन्होंने जंगलों पर जनसंख्या के बढ़ते दबाव को मुख्य कारण माना।

आहार में अन्तराल

10 पहाड़िया जनजातीय बहुल गांवों में वर्ष 2012 में वेल्थंगरलाइफ के ''फाइट हंगर फर्स्ट इनीशियेटिव'' के अन्तर्गत आधारभूत सर्वेक्षण के एक भाग के तौर पर एक पोषण सर्वेक्षण अध्ययन किया गया। अध्ययन में यह निकल कर आया कि 33 प्रतिशत बच्चों का वजन अत्यन्त कम तथा 40 प्रतिशत बच्चों का वजन मध्यम वर्ग के अन्तर्गत है। 56 प्रतिशत बच्चों की बढ़त न के बराबर है। खाद्य की कमी वाले दिनों में औसतन 1500 केकल कैलोरी की खपत होती है। इसके विपरीत, नियामगिरी पहाड़ियों में डोंगरिया कोंध समुदाय के साथ किये गये एक दूसरे अध्ययन में यह निकलकर आया कि जंगलों से पूरे वर्ष पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री मिलती है और ग्रीष्म, वर्षा एवं जाड़े की ऋतुओं में कुल भोजन में इन जंगली खाद्य पदार्थों का क्रमशः लगभग 37 प्रतिशत, 30 प्रतिशत एवं 45 प्रतिशत योगदान रहता है। पोषण सर्वेक्षण अध्ययन से प्राप्त तथ्य यह बताते हैं कि विभिन्न कारणों से जनजातीय समूहों के आहार में शामिल जंगली खाद्य पदार्थों के हिस्सों

में कमी आयी है। उदाहरण के लिए, हाल के वर्षों में, सरकार ने आदिवासी तथा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले (बी0पी0एल0) परिवारों की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु अनुदानित दर पर चावल की योजना का क्रियान्वयन प्रारम्भ हुआ।

इससे उनकी भोजन की आदतों में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है और अब उनकी खाद्य विविधता सिर्फ चावल आधारित भोजन पर ही सिमट कर रह गयी है। चूंकि ये जनजातीय समुदाय पोषण के विषय में बहुत जागरूक नहीं होते, नतीजतन वे नमक, तेल एवं अन्य घरेलू उपयोग की वस्तुओं का मूल्य चुकाने के लिए पोषण से भरपूर जंगली खाद्य जैसे फल, जड़ें एवं कन्द, कीट, चिड़ियां, खाद्य पत्तियां, मशरूम, इमली एवं बांस की कोंपलों को बिचौलियों को सस्ते दामों पर दे रहे हैं।

खजाना

पहाड़िया समुदाय के एक बुजुर्ग सदस्य श्री रावते पहाड़िया का कहना है कि–''आज के बच्चे इतने मजबूत नहीं हैं, जितना हमारे जमाने में हुआ करते थे।'' इसी बात को ध्यान में रखते हुए सबसे पहला कार्य जंगली खाद्य पदार्थों का मौसमी चित्रण किया गया। इन जंगली खाद्य पदार्थों की पहचान करने तथा दस्तावेजित करने के कार्य में हमने बच्चों को शामिल किया। इस दौरान यह भी स्पष्ट हुआ कि आधुनिक विकास के क्रम में उनके परम्परागत ज्ञान विलुप्त होते जा रहे हैं। युवा वर्ग अपनी परम्पराओं और समृद्ध जैव विविधता से अनजान है और खाद्य एवं औषधियों के लिए वे बाहरी स्रोतों पर बहुत अधिक निर्भर हो रहे हैं। फलस्वरूप, वे कुपोषण, भूख एवं बीमारी के सन्दर्भ में अत्यधिक संवेदनशील होते जा रहे हैं।

अकृषित खाद्य, जिनमें पत्तियां, फूल, फल, जानवरों, चिड़ियों, मशरूम, मछली, केकड़ा, घोंघा, शहर आदि सहित अधिकांश विलुप्त हो रहे जंगली पौधों को समुदाय याद कर सकता है। उन्होंने साझा किया कि विशेषकर गर्मियों एवं बरसात के मौसम में जब हमारे पास आय का कोई स्रोत नहीं रहता और हमें जलवायु से उत्पन्न तनावों को झेलना पड़ता है, उस समय ये जंगली अकृषित खाद्य हमारे लिए प्राकृतिक बीमा के तौर पर है। लगभग 40 वर्षीय एक किसान ने आगे आकर कहा– ''हमारे बचपन में हम बाजार से सिर्फ मिट्टी का तेल व नमक ही खरीदते थे, जबकि आज हम अपनी जरूरत की लगभग सभी वस्तुएं बाजार से या महाजन से लेते हैं, जो हमारे साथ बहुत अधिक व्यापार करते हैं। आज जीने के लिए हाथ में नगदी का होना बहुत आवश्यक है। जबरिया पलायन और जल–जमाव के कारण पेड़ों का उकठ जाना इस बदलते परिदृष्य का एक प्रत्यक्ष परिणाम है।''

समुदाय ने जंगलों में मौजूद 10 प्रकार के मशरूम, 8 प्रकार के जलीय खर–पतवारों, 5 प्रकार के शहद, 20 प्रकार की चिड़ियों, हरी पत्तीदार सब्ज़ियों की 24 प्रजातियां, 15 प्रकार के फल, 6 प्रकार की सब्ज़ियों, 6 प्रकार की दलहनों, 2 प्रकार के मोटे अनाज, 3 प्रकार के फूल, 4 प्रकार के कन्द तथा 3 प्रकार के बीजों की पहचान की।

समय बीतने के साथ धीरे–धीरे, समुदाय ने जंगलों में मौजूद 10 प्रकार के मशरूम, 8 प्रकार के जलीय खर–पतवारों, 5 प्रकार के शहद, 20 प्रकार की चिड़ियों, हरी पत्तीदार सब्ज़ियों की 24 प्रजातियां, 15 प्रकार के फल, 6 प्रकार की सब्ज़ियों, 6 प्रकार की दलहनों, 2 प्रकार के मोटे अनाज, 3 प्रकार के फूल, 4 प्रकार के कन्द तथा 3 प्रकार के बीजों की पहचान की। इन सभी को उनके स्थानीय नाम, वैज्ञानिक नाम, विवरण, उनकी आदतों, रूचियों एवं सहनशीलता, उपयोग, पोषण मूल्य, मौसमी चित्रण इत्यादि के साथ सावधानीपूर्वक दस्तावेजित किया गया। दस्तावेजीकरण का यह कार्य समुदाय से निकले स्वयंसेवकों ने किया। विशेषज्ञों की भागीदारी होने के बावजूद मशरूम एवं मछलियों की वैज्ञानिक पहचान नहीं की जा सकी।

की जा रही कार्यवाही

दस्तावेजीकरण प्रक्रिया के माध्यम से पहाड़िया जनजाति की प्रकृति खाद्य एवं संस्कृति को हमने बहुत अच्छे तरीके से जाना। साथ ही विभिन्न प्रकार के कन्द मूलों व जलीय जीवन की पहचान व युवा समुदाय को भी हो गई, जिससे इस समुदाय की आहार विविधता भी उन्नत हुई। यद्यपि कि प्रारम्भ में, यह जानकारी के स्तर पर अधिक था, फिर भी समुदाय ने इससे लाभ लिया। बरसात के मौसम के दौरान, कन्द एवं पत्तीदार सब्ज़ियां तथा गर्मियों के दौरान कुछ फल उनके आहार में शामिल हो गये थे। शुरूआती दौर में इसकी मात्रा कम थी परन्तु अब प्रत्येक सप्ताह उनके दोपहर एवं रात के भोजन में बारह से चौदह बार ये सामग्रियां शामिल हो जाती हैं। महिलाएं कुछ ऐसे व्यंजनों तथा अभ्यासों को याद कर सकीं, जो वे लगभग भूल चुकी थीं। बहुत सी प्रसंस्करण गतिविधियां जैसे – हरी पत्तियों को सुखाना, स्थानीय सूखी पत्तियों एवं भीगे पिसे दालों को मिलाकर दाल की अदौरी (बरी) तैयार करने का प्रयास किया गया, जिसे लोगों ने सराहा और अपने आहार में शामिल भी किया। इससे एक तरफ तो लोगों की पोषण सुरक्षा उन्नत हुई तो दूसरी तरफ आयजनक गतिविधियों के तौर पर लोगों ने व्यापक संभावनाएं देखीं।

फोटो : लेखक

पहाड़िया समुदाय की महिलाओं का पारम्परिक नृत्य

इन अनुभवों के आधार पर, पोषण शिक्षा को केन्द्र में रखते हुए एक क्षमता अभिवर्धन माड्यूल विकसित किया गया। इस माड्यूल में पोषण स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी मुद्दों के ऊपर जानकारी, स्थानीय व्यंजनों को तैयार करना, खाद्य प्रसंस्करण की साधारण तकनीक आदि को शामिल किया गया। 10 गाँवों से 25 माताओं को चयनित कर उपरोक्त विषयों पर प्रशिक्षित किया गया ताकि वे इसे आगे बढ़ाते हुए अन्य महिलाओं को प्रशिक्षित कर सकें।

समुदाय की भोजन और आहार सुरक्षा सुनिश्चित होने के बाद कार्य के अगले चरण में दूसरे कामों की ओर ध्यान दिया जाने लगा। इसके अन्तर्गत जंगल से मिलने वाले कन्द–मूल, औषधियों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना प्रमुख तौर पर शामिल था। समुदाय के अगुआ लोगों ने अकृषित खाद्य और आस–पास फैले प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। संरक्षण प्रक्रिया के दौरान समुदाय के सामने बहुत सी चुनौतियां भी सामने आयीं। नये–नये पौधों का रोपण करने के बाद उन्हें बचाये रखना सबसे बड़ी चुनौती थी।

जंगल में यह देखा गया था कि स्थानीय प्रजातियों में आपस में बहुत अच्छा ताल–मेल था, जिससे उनका बचना और उनकी बढ़त दोनों ही सुनिश्चित थी जबकि कम होते जंगलों में वृक्षारोपण बहुधा असफल हो जाता था। इससे सबक लेते हुए, समुदायों ने घने जंगलों के खाली स्थानों को भरने के माध्यम से संरक्षण प्रक्रिया को विकसित किया अर्थात् जंगलों में जहां–जहां पेड़ कट जा रहे थे, समुदाय के लोगों ने उसी स्थान पर पुनः नये पौधे लगाने प्रारम्भ कर दिये। इस प्रकार चार संरक्षण प्रक्षेत्र विकसित किये गये। इनमें से बुछुटोला और सिमलोंग में एक–एक प्रक्षेत्र थे, जबकि दो प्रक्षेत्र कुतलो पहाड़ पर विकसित किये गये। प्रत्येक स्थल पर, प्रारम्भ में 35–40 स्थानीय प्रजातियों का संरक्षण किया गया। धीरे–धीरे यह संख्या बढ़ती गई। इसके साथ ही अकृषित खाद्य और जन सामान्य के मुद्दे से सम्बन्धित जंगल एवं जंगली उत्पाद संरक्षण के विषय पर समुदाय के अगुआ लोगों के लिए एक और क्षमता अभिवर्धन माड्यूल भी तैयार करने का कार्य किया गया।

आहार में आने वाली पोषण सम्बन्धी कमी को पूरा करने के लिए, कुछ अन्य गतिविधियां भी सम्पादित की गयीं। कटाई के बाद समुदाय के लोग अधिकांशतः दलहनों को प्लास्टिक थैलों में संग्रहित करके रखते थे, जिससे अक्सर उनमें कीड़े पड़ जाते थे। परिणामतः किसानों को कटाई के एक या दो महीने बाद ही अपनी उपज को मजबूरन बेच देना पड़ता था। इस मुद्दे को ध्यान में रखते हुए, 70 परिवारों को दलहन भण्डारण करने के लिए जी0आई0 शीट से बने ड्रम दिये गये। साथ ही लोगों को स्थानीय सामग्रियों जैसे नीम की सूखी पत्तियों, करंज एवं निरगुण्डी के पत्तियों का उपयोग कर संरक्षण प्रक्रियाओं के बारे में भी प्रशिक्षित किया गया। इन पद्धतियों को अपनाकर लोगों ने अपनी उपज को संरक्षित किया और बाद में दाम चढ़ने पर उपज बेचकर अच्छा लाभ प्राप्त किया इससे एक फायदा यह भी हुआ कि लोगों ने मजबूरी में अपने उत्पादों को बेचना बन्द कर दिया।

प्रसंस्करण के इस कार्य के साथ ही और भी बहुत से कार्य किये गये। उदाहरण के लिए, जुजुबे, सेब, आम, अमरूद, कटहल आदि के पौधों को गृहवाटिका में लगाया गया। 6 गाँवों में लोगों को उत्प्रेरित कर फिर से बाजरा की खेती की जाने लगी तथा जलग्रहण उपचार व चैनल निर्माण कार्य के माध्यम से अतिरिक्त दो माह के लिए पानी उपलब्धता सुनिश्चित करने का कार्य किया गया। इससे समुदाय को गर्मियों के दिनों में भी सिंचाई हेतु पानी की उपलब्धता सुनिश्चित होने से उनके लिए खेती कार्य में आसानी हुई।

भावी कार्य

लोग अब पहले की भाँति ही अकृषित खाद्य अथवा जंगलों से प्राप्त खाद्य पदार्थों के बारे में गंभीरता से सोचने लगे हैं और पहले की ही भाँति अपने आहार में इन खाद्य पदार्थों को शामिल भी करने लगे हैं। इन समुदायों की नई पीढ़ी फिर से वन उपजों तथा उसकी उपयोगिता के बारे में जागरूक हो रही है। लेकिन इसके साथ ही यह भी महसूस किया गया है कि जब तक वन आधार वापस नहीं मिल जाता और पारिस्थितिक तंत्र फिर से स्थापित नहीं हो जाता है, तब तक अकृषित खाद्य पदार्थों की मांग पूरी नहीं हो सकती है। अकृषित खाद्य से शुरू हुई यह पहल अब जल के विकास, आहार को उन्नत करने तथा खेती की विविधता सम्बन्धी मांग तक पहुंच चुकी है।

उपरोक्त हस्तक्षेपों के फलस्वरूप पहाड़िया समुदाय के लोगों के जीवन एवं रहन–सहन में व्यापक परिवर्तन आया

विविध जंगली उत्पादों का प्रदर्शन

है। किसानों की सामाजिक मान्यता बढ़ी है और आस–पास के अन्य गाँवों के बहुत से किसान यहां के अनुभवों से लाभ लेकर अपनी खेती एवं आजीविका में सुधार करते हुए लाभान्वित हो रहे हैं। समुदाय से कई मास्टर ट्रेनर तैयार हुए हैं जो अपने स्वयं के अनुभवों को विभिन्न माध्यमों से अन्य लोगों तक पहुँचा रहे हैं। यहां के कुछ किसान अपने अनुभवों को साझा करने के लिए रांची और दिल्ली तक जा चुके हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे किसान थे, जिन्होंने अपने जीवन में पहली बार मोटर / बस से यात्रा की। ये वन उत्पाद / अकृषित खाद्य पदार्थ समुदाय वालों के लिए खजाने के तौर पर थे, परन्तु हमारा खजाना तो रावते पहाड़िया, शंकरी पहाड़िया एवं और भी बहुत से किसानों की आंखों में तैरती खुशी और आत्मविश्वास ही है जो परियोजना से जुड़ाव के बाद होने वाले परिवर्तनों की वजह से आया है।

पहाड़िया समुदाय के लोग अब न सिर्फ खाद्य जंगल तैयार कर रहे हैं, वरन् बहुत से वृक्षों, झाड़ियों, लताओं, घासों, कन्दों को जंगलों से दूर जाकर लगा रहे हैं और इस प्रकार वे इन जंगली खाद्य स्रोतों का संरक्षण भी कर रहे हैं। इससे उन्हें दोहरा लाभ हो रहा है– एक तरफ तो उनकी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो रही है तो दूसरी तरफ उनको जलौनी लकड़ी की उपलब्धता भी हो रही है।

उल्लेखनीय है कि जलौनी लकड़ी हेतु इन समुदाय की निर्भरता वनों पर ही थी और इसे लाने हेतु इस समुदाय की महिलाओं का बहुत सा समय व श्रम दोनों लगता था जिसे अब वे अन्य आयजनक कामों में लगा रही हैं। उनका मानना है कि वास्तव में यह एक लम्बा रास्ता है, परन्तु वे चल रहे हैं और उन्हें विश्वास है कि उनके गाँव में भी समृद्धि का सूरज जरूर चमकेगा।

■

अंशुमान दास
कार्यक्रम प्रबन्धक
वेल्थंगरलाइफ कण्ट्री कार्यालय– भारत
ए.3, साओमी नगर, नई दिल्ली– 110017
ईमेल : Anshuman.Das@welthungerhilfe.de

Valuing underutilised crops
LEISA INDIA, Vol 18, No. 2, June. 2016